ये तेरे प्रतिरूप

[कहानी-संग्रह]

'अज्ञेय'



राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

१९६१
© सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन

तीसरा संस्करण १९६६

मूल्य दो रुपये पचास पैसे
प्रकाशक राजकमल [illegible] दिल्ली
मुद्रक राजकमल प्रेस [illegible] दिल्ली

YE TERE PRATIROOP by Ajneya
SHORT STORIES 2·50

—खड़ा मिलेगा
वहा सामने तुमको
अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा
नर, जिसको अनझिप आखो में
नारायण की व्यथा भरी है।

शमशेरजी को

क्रम

सब ग्रौर दव	९
देवीसिंह	२१
नारंगिया	२७
हजामत का साबुन	३४
कन्ा का सुन सुना ये कद	४०
शरणागता	४७
लटन-बक्स	६१
मुस्लिम मुस्लिम भाई भाई	६६
नमस्ते तत्र दवता	७२
बन्ला	८२
क्षितीन बाबू	८९
कविता ग्रौर जीवन—एक कहानी	९६
निगा	१०६
कलाकार का मुक्ति	१०९

निवेदन

इस संकलन की आधी कहानियाँ पुस्तकाकार यहीं पहली बार छप रही हैं। अन्य कहानियाँ दूसरे संग्रहों में छप चुकी हैं किन्तु जिन संग्रहों में छपी थीं वे वर्षों से अनुपलब्ध हैं और उनके पुनर्मुद्रण का विचार भी नहीं है। ऐसी परिस्थिति में उनमें संकलित कहानियों को नये प्रकाशन में मिला लेना स्वाभाविक था। जो कहानियाँ यहाँ दी गयी हैं उनके इस संकलन में आने की संगति सबके सामने स्पष्ट है और यह आशा करता है कि जिस दृष्टि से ये कहानियाँ एकत्र की गई वह पाठक को भी अनुमोदित लगेगा।

—अज्ञेय

सेब और देव

प्रोफेसर गजानन पण्डित न अपना चश्मा पोछकर फिर आखो पर लगाया और देखत रह गए।

मोटर पर स उतरकर और सामान डाकबगल म भिजवाकर उन्होने सोचा था अभी आराम करने की जरूरत तो है नहीं, जरा घूम घामकर पहाडी सौन्दर्य देख ल और इसीलिए मोटर के अड्डे के धक्कम धक्क से अलग होकर व इस पहाडी रास्त पर हो लिए थ। छाया म जब चश्मे का काच ठण्डा हो गया और ऊपर उनके गम बदन स उठी हुई भाप जमने लगी तब उन्होने चश्मा उतारकर रूमाल स मुह पोछा फिर चश्मा साफ करके आखो पर चढ़ाया और फिर देखत रह गए।

पहाडी रास्ता आगे एकाएक खुल गया था चीड के वृक्ष समाप्त हो गए थे। आगे रास्त को पार करता हुआ एक झरना बह रहा था। उसका जितना अश समतल भूमि म था उसपर तो छाया थी लेकिन जहा वह माग के एक ओर नीच गिरता था वहा प्रपात क फेन पर सूय की किरणें भी पड रही थी। ऐसा जान पडता था कि अधकार की कोख म से चादी का प्रवाह फूट पडा है—या कि प्रकृति-नायिका की कजरारी आख स स्नेह क गद्गद आसुओ की झडी और उसक पार एक चट्टान क सहारे एक पहाडी राजपूत बाला खडी थी। उसकी चौकी हुई भोली चितवन स साफ दीखता था कि प्रोफेसर साहब का यहा अकस्मात् आ जाना उस एकदम अनधिकार प्रवेश मालूम हो रहा है।

प्रोफेसर साहब दिल्ली के एक कालेज म प्राचीन इतिहास और पुरातत्त्व क अध्यापक है। व उन भाग्यवान लोगो म है जिनका पेशा और मनोरजन एक हो है। मनोरजन के लिए भी व पुरातत्त्व की चर्चा ही करते हैं।

कोई उठाएगा नहीं कि न जाने किसकी है और कौन लेने आ जाए!

रास्ता अब फिर घिर गया था लेकिन चीड़ के दीर्घकाय वृक्षों से नहीं। अब उसके दोनों ओर थे सेब के छोटे छोटे लचीले गातवाले पेड़ डार डार पर लदे हुए फलों के कारण मानो विनय से झुके हुए—क्योंकि जहाँ सार होता है वहाँ विनय भी अवश्य होता है क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है—और कभी कभी हवा से झूम-से जाते हुए। कुल्लू के जगत्प्रसिद्ध सेबों की प्रशंसा प्रोफेसर साहब ने सुन ही रखी थी, कई बार मँगाकर सेब खाए भी थे लेकिन आज इस प्रकार पेड़ पर लगे हुए असंख्य फलों को देखकर उनकी तबीयत खुश हो गई। और इससे भी अधिक खुशी हुई इस बात से कि गन्ध और स्वाद और रस की उस विपुल राशि का न कोई रक्षक वहाँ दिखने में आता है न बचाव के लिए बाड़ तक लगाई गई है। पहाड़ी सभ्यता के प्रति उनका आदर भाव और भी बढ़ गया—क्या शहर में इस तरह बाग रह सकता? पत्ता भी पकने की कभी नौबत हो न आती और नहीं तो स्कूल कालेजों के लड़के ही टिड्डी दल की तरह आकर सब साफ कर देते और जितना खाते नहीं उतना बिगाड़ देते। वहाँ तो कोई बाग लगाए तो दस एक भोजपुरिये लठैत पहरेदार रखे और फिर भी चारों ओर जेल की सी दीवार खड़ी करे कि कोई भूत छिपकर न ले भागे तब कहीं जाकर चैन से रह सके। और यहाँ—यहाँ बाग की सीमा बनाने के लिए एक तार का जंगला तक नहीं है। पेड़ों के नीचे जो लम्बी-लम्बी घास लग रही है वही रास्ते के पास आकर रुक जाती है वही तक बाग की सीमा समझ लो तो समझ लो। यहाँ तो

प्रोफेसर साहब के पास ही धम्म से कुछ गिरा। उन्होंने चौंककर देखा, उन्हें आते देख एक लड़का पेड़ पर से कूदा है और उसका अपर्याप्त आड़ में छिपने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ में दो सेब हैं जिन्हें वह अपने फटे हुए भूरे कोट में किसी तरह छिपा लेना चाहता है।

उनकी झेंपी हुई आँखें और चेहरा साफ कह रहा था कि वह चोरी कर रहा है।

यहा कुल्लू पहाड की सुरम्य उपत्यकाओं मे भी वे यही सोचते हुए आए हैं कि यहा भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष उन्हें मिलेंगे और हिंदू काल की शिल्प कला के नमूने और धातु या प्रस्तर या सुधा की मूर्तिया और न जाने क्या क्या लेकिन इतना सब होते हुए भी सौन्दर्य के प्रति—जीते-जागते स्पन्दनयुक्त क्षणभंगुर सौन्दर्य के प्रति—उनकी आखें अधी नही हैं। बाला को वहा खडी देखकर उसके परो के पास बहते हुए झरने का स्वर सुनते हुए उन्हें पहले तो एक हंसिनी का ख्याल आया फिर सरस्वती का (यद्यपि बाला के हाथ में वीणा नहीं एक छोटी-सी छडी थी)। उन्होंने अपने स्वर को यथासम्भव कोमल बनाकर पूछा तुम कहा रहती हो ?

बाला ने उत्तर नहीं दिया ससम्भ्रम दृष्टि से उनकी ओर देखकर जल्दी जल्दी पहाड पर चढने लगी।

प्रोफेसर साहब मुस्कराकर आगे चल दिए। बालिका का भोलापन उन्हें अच्छा अच्छा सा लगा। सोचने लगे कितने सीधे-सादे सरल स्वभाव के होते हैं यहा के लोग! प्रकृति की सुखद गोद में खेलते हुए इन्हें न फिक्र है न खटका है न लोभ लालच है। अपने खाते-पीते ढोर चराते गाते नाचते दिन बिता देते हैं। तभी तो बाहर से आनेवाले आदमी को देखकर सकोच होता है। अपने आपमे लीन रहनेवाले इन भले प्राणियो को बाहर वालो से क्या सरोकार ?

आगे बढते बढते प्रोफेसर साहब सोचने लगे ऐसे भले लोग न होते, तो प्राचीन सभ्यता के जो अवशेष बचे हैं वे भी क्या रह जाते ? खुदा न-ख्वास्ता ये लोग यूरोपियन सभ्यता के सीखे हुए होते तो एक दूसरे को नोचकर खा जाते उसकी राख भी न बची रहने देते। लेकिन यहा तो फाहियान के जमाने का ही आलम है सबको अपने काम से मतलब है दूसरे के काम मे दखल देना दूसरे के मुनाफे की ओर दृष्टि डालना यहा महापाप है। लोग ढोर चरने छोड देते है शाम को ले आते हैं। कभी चोरी नही शिकायत नही। खेत खडे है कोई पहरेदार नही। मजाल क्या एक भुट्टा भी चोरी हो जाए। मेरे ख्याल में तो अगर मैं एक चवन्नी यहा राह मे फेंक दू तो

कोई उठाएगा नही कि न जान किसकी है और कौन लेने आ जाए।

रास्ता अब फिर घिर गया था लेकिन चीड व दीर्घकाय वृक्षो से नहा अब उसके दाना ओर ये सब के छोटे छोटे लचाल गातवाने पेड डार डारपर लदे हुए फलो के कारण मानो विनय से झुके हुए—क्योकि जहा सार होता है वहा विनय भी अवश्य होता है क्षुद्र व्यक्ति ही अविनयी हो सकता है—और कभी कभा हवा से झूम-से जाते हुए। कुलू के जगप्रसिद्ध सेबो की प्रशंसा प्राफेसर साहब ने सुन हा रखी थी कई बार मगाकर सब खाए भी थ लेकिन आज इस प्रकार पेड पर लगे हुए असख्य फलों को देखकर उनकी तबीयत खुश हो गई। और इससे भी अधिक खुशी हुई इस बात से कि गन्ध और स्वाद और रस की उस विपुल राशि का न कोई रक्षक वहाँ देखने म आता है न बचाव के लिए बाड तक लगाई गई है। पहाडी सभ्यता के प्रति उनका आदर भाव और भी बढ गया—क्या शहर म इस तरह बाग रह सकता? फलो के पकने की कभी नौबत ही न आती और वहा तो स्कूल कालेजों के लडके ही टिड्डी दल की तरह आकर सब साफ कर देते और जितना खाते नहीं उतना बिगाड देते। वहा तो कोई बाग लगाए तो दस गज भोज पुरिये लठत पहरेदार रखे और फिर भी चारो ओर जल की सी दीवार खडी कर कि कोई बुरा छिपकर न सके आग तब वहा जाकर फल से रह सके। और यहा—यहा बाग की सीमा बताने के लिए एक तार का जगला तक नहा है। पेडों के बीच जो लम्बी-लम्बी घास उग रही है वही रास्ते के पास आकर रुक जाती है वहा तक बाग की सीमा समझ लो तो समझ लो। यहा तो

प्रोफेसर साहब के पास ही घम्म से कुछ गिरा। उन्होने चौककर देखा, उन्हें पास एक लम्बा पेड पर न झूला है और उसकी अपर्याप्त आड म छिपने की कोशिश कर रहा है। उसके हाथ म दो सेब है जिन्हे वह अपने फटे हुए भूरे कोट में किसी तरह छिपा लेना चाहता है।

उसकी डरी हुई आखें और चेहरा साफ कह रहा था कि वह चोरी कर रहा है।

कि यह ऊचा शिखर किले के लिए बहुत उपयुक्त जगह है और यह भी व जान गए कि यहा बना हुआ किला उजडकर कितनी जल्दी निरवशेष हो जाएगा ।

झाडिया भी छोटी होती चली । घास की बजाय अब पथरीली जमीन आई जिसम किसी तरफ कोई बनी हुई पगडडी नहा थी जिधर चले जाओ वही माग । कही-कही लाल पत्थर के भी कुछ टुकडे दीख जाते थ जो शायद किले की इमारत म कही लगे होगे नही तो उधर लाल पत्थर होता नही । कही-कहा पत्थर और मिट्टी क स्तूपाकार टील की आड मे कोई गाढे रग के पत्तोवाली झाडी लगी हुई दाख जाती ना वह आसपास के उजाड सूने पन को और भी गहरा कर देती । साझ क धुधलक म एसी झाडी को देख कर स्तूप म धूम्रवत् निकलते हुए किसी प्रत की कल्पना होना कोई असम्भव बात नहा थी ।

एक ऐसे ही स्तूप की आड मे प्रोफेसर साहब ने देखा एक गडढे मे कीच भरी है जिसकी नमी स पोसे जाते हुए दा वृक्ष खडे हैं और उनके नीचे पत्थर का छोटा-सा मन्दिर है जिसका द्वार बन्द पडा है ।

प्रोफेसर साहब ने कुण्डे म अटका हुई कील निकाली तो द्वार खुलने की बजाय आगे गिर पडा । उसके कब्ज उखड गए हुए थ । उन्होने किवाड को उठाकर एक ओर धर दिया ।

थोडी देर व पीछे हटकर खडे रह कि बन्द और सीलन के कारण बदबूदार हवा बाहर निकल जाए फिर भीतर झाकने लगे ।

मन्दिर की बुरी हालत थी । भीतर न जाने कब के बलि पशुआ के सीग—बकरे के और हिरन के—पडे हुए थ जो सूखकर धूल के रग के हो गए थ । उनपर कीडे भी चल रहे थ । फश क पत्थरो क जोडो स काही उग आई थी । उन सींगा के ढेर स देवी की काले पत्थर की मूर्ति एक ओर को झुक गई थी पास म पडी हुई गणेश की पीतल की मूर्ति जग से विकृत हो रही थी । केवल दूसरी ओर खडा श्वेत पत्थर का शिव लिंग अब भी साफ चिकना और सधे हुए सिपाही की तरह शान्त खडा था । आसपास की जजर

अव्यवस्था में उनके दर्पोन्नत भाव से ऐसा जान पड़ता था मानो क्रुद्ध होकर कह रहा हो "मेरी इस निभृत मतनाला में आकर मेरे कुटुम्ब की शान्ति भंग करनेवाले तुम कौन ?"

दो एक मिनट प्रोफेसर साहब देहरी पर खड़े खड़े ही इस दृश्य को देखते रहे। फिर उन्होंने बांह पर टंगा हुआ अपना ओवरकोट नीचे रखा एक बार चारों ओर देखकर निर्जन पाकर भी जूते खोल देना ही उचित समझा और भीतर जाकर देवी की मूर्ति उठाकर देखने लगे।

मूर्ति अत्यन्त सुन्दर थी। पांच सौ वर्ष से कम पुरानी नहीं थी। इस लम्बी अवधि का उसपर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा था या पड़ा था तो पत्थर को और चिकना करके मूर्ति को सुन्दर ही बना गया था। मूर्ति कहीं बिकती तो तीन-चार हजार से कम की न होती किसी अच्छे पारखी के पास होती तो दस हजार भी कुछ अधिक मूल्य न होता। और यह यहां ऐसी उपेक्षित हालत में पड़ी है। न जाने कब से कोई इस मन्दिर तक आया भी नहीं है !

प्रोफेसर साहब ने मूर्ति ठीक स्थान पर सीधी करके रख दी और फिर देहरी पर आकर उसका सौन्दर्य देखने लगे।

पांच सौ वर्ष पांच सौ वर्ष से यह यहीं पड़ी होगी न जाने कितनी पूजा इसने पाई होगी, कितनी बलियों के ताज-गर्म-पूत रक्त से स्नान करके अपना देवी सौन्दर्य निखारा होगा और अब कितने बरसों से इन रेंगते हुए कीड़ों की लम्बी-लम्बी जिज्ञासु मूछों का ग्लानिजनक गुदगुदाहट सह रही होगी उफ देवत्व की कितनी उपेक्षा ! मानव नश्वर है वह मर जाए और उसकी अस्थियों पर कीड़े रेंगे यह समझ में आता है। लेकिन देवता पत्थर जड़ है उसका महत्व कुछ नहीं, लेकिन मूर्ति तो देवता की है देवत्व की चिरन्तनता की निशानी तो है। एक भावना है पर भावना स्मरणीय है—क्या यह मूर्ति यहीं पड़े रहने के काबिल है, इन कीड़ों के लिए जिनके पास श्रद्धा को दिल नहीं पूजन को हाथ नहीं देखने को आंखें नहीं, छूने को त्वचा तक नहीं केवल टटोलने को हिलती हुई गन्दी मूछें

हैं यह मूर्ति वही ठिकाने से होगी

न जाने क्या प्रोफेसर साहब ने एकाएक मन्दिर-द्वार से हटकर चारों ओर घूमकर देखा फिर न जाने क्यों आसपास निर्जन पाकर तसल्ली की सांस ली और फिर वहां आ खड़े हुए।

मूर्ति गणेश की भी बुरी नहीं लेकिन वह उतनी पुरानी नहीं न उतनी सुन्दर शिला पर निर्मित है। पीतल की मूर्ति में कभी वह बात आ ही नहीं सकती जो पत्थर में होती है। देवी की मूर्ति को देखते-देखते प्रोफेसर साहब के हृदय की स्पन्दन-गति तीव्र होने लगी—इतनी सुन्दर जो थी वह! वे फिर आगे बढ़कर उसे उठाने को हुए लेकिन फिर उन्होंने बाहर झांककर देखा। पर वहां कोई नहीं था कोई आता ही नहीं उस बिचारे उजड़े हुए मन्दिर के पास! किसे परवाह थी निर्जन को अपनी दीप्ति से जगमग करती हुई उस देवी की! देवी के प्रति दया और सहानुभूति से गद्गद होकर प्रोफेसर साहब फिर भीतर आए। लपककर उन्होंने मूर्ति को उठाया और अपने धड़कते हुए हृदय को शान्त करने की कोशिश करते हुए एकटक उसे देखने लगे।

दिल इतना धड़क क्यों रहा है? प्रोफेसर साहब को ऐसा लगा जैसे वे डर रहे हैं। फिर उन्हें इस विचार पर हंसी-सी भी आ गई। डर किससे रहा हूं मैं? प्रेतों से? मैं भी क्या यहां के लोगों की तरह अन्धविश्वासी हूं जो प्रेतों को मानूंगा? कविता के लिहाज से भले ही मुझे यह सोचना अच्छा लगे कि यहां प्रेत बसते हैं और रात को जब अंधेरा हो जाता है तब इस बन्द मन्दिर में आकर देवी के आसपास नाचते हैं देवी है शिव है उनके गुण भी तो होने ही चाहिए! रात को मूर्तियों को घेर घेरकर नाचते होंगे और इन न जाने कब के बलि पशुओं के भस्मीभूत सींगों से प्रतोषित प्रसाद पाते होंगे। और दिन में मन्दिर की कन्दराओं में दरारों में छिपकर अपनी उपास्य मूर्तियों की रक्षा करते होंगे देखते होंगे कि कौन आता है क्या करता है

उन्होंने फिर मूर्ति को रख दिया और लौटकर देखा। उन्हें एकाएक

नगा जस उस ग्रखण्ड नीरवता म काई छाया सा ग्राकार उनके पीछ से भागकर कहीं छिप गया है—ग्रत । व फिर एक रवती-सी हसी हमकर बाहर निकल ग्राए। इस धार निजन ने मर शहर के शार स उलझे स्नायुग्रा को ग्रौर उनमा दिया है—इसा नतीजे पर वे पहुच ग्रौर फिर मन्दिर की ग्रोर देखने लगे।

दिन ढल रहा था। मन्दिर की लम्बी पसरती हुइ छाया का दखकर प्रोफेसर साहब को एसा लगा, माना वह दूर हटती हटना भी मन्दिर स ग्रलग हाना नही चाहता उससे चिपटी हुई है, मानो उसकी रक्षा करना चाहती हा माना वह मन्दिर ग्रौर उसकी मूर्तिया उस छाया की गोद म शिशु हा। प्रोफेसर साहब का मन भटकने लगा।

ईजिप्ट क पिरामिड भी इतन ही उपक्षित पड थ। यह मन्दिर ग्राकार म बहुत छाटा है व विराट थ लकिन उपक्षा ता वही थी। उसम भी न जान क्या-क्या खज़ान ऐस ही पड थ जस यहा यह मूर्ति उनक बार म भी ग्रपार न क्या क्या बातें फला रखी था भूत प्रेतो की ग्रन्त म यूरोप के पुरातत्वविद साहस करक वहा गए उन्होंने उनम प्रवश किया ग्रौर ग्रब ससार क बड-बड सग्रहालयो म वे खज़ान पड हैं ग्रौर ग्रपन महत्व क ग्रनुरूप सम्मान पात हैं। फिलाडेल्फिया क ग्रजायबघर म तूतानखामन् की वह स्वण मूर्ति—उस नौ सर खरे सोने का ही मूल्य तीस हजार रुपय हागा—फिर प्राचीनता का मूल्य ग्रलग ग्रौर उसम जड हुए हार-जवाहरात का ग्रलग कुल मिलाकर लाखों रुपये की चीज़ है वह

वे फिर भीतर गए। मूर्ति उठाई ग्रौर फिर रख दी। रखकर फिर बाहर ग्रा गए। उन्होने फिर सब ग्रार दखा। कोई नहीं था। सूय भी एक छोटे-स बादल क पीछ छिप गया था।

एकाएक उनकी घबराहट का कारण स्पष्ट हा गया। कुछ ठण्ड-सी जानकर उन्होंने जल्दी स ग्रोवरकाट पहना ग्रौर फिर भीतर चल गए।

मूर्ति के उपयुक्त यह स्थान कदापि नहीं है। मन्दिर है पर जहा पूजा ही नहीं होती वह कसा मन्दिर? ग्रौर गाव वाल परवाह कब करत है?

यहा मन्दिर भी गिर जाए तो शायद महीना उन्हे पता ही न लगे। कभी किसी भटकी हुई भेड बकरी की खोज म आया हुआ गडरिया आकर देख ता देखे ! यहा मूर्ति को पड़ा रहने देना भूल ही नही पाप है।

इस निश्चय पर आकर भी उन्होने एक बार बाहर आकर तसल्ली की कि कही कोई देख नही रहा है तब लौटकर मूर्ति उठाकर जल्दी से कोट के भीतर छिपाइ किवाड को यथास्थान खडा किया बूट एक हाथ म उठाए और बिना लौटकर देखे भागते हुए उतरने लग।

जब देवी का स्थान और उसके ऊपर खड दोना पेडों की फुनगी तक आखो की ओट हो गई तब उन्होने रुककर बूट पहने और फिर धीरे धीरे उतरते हुए एसा माग खोजने लगे जिससे गाव म से होकर न जाना पड शिखर के दूसरे मुख से हो वे उतर सकें।

गाव मान भर पीछे छूट गया। सेवो के बगीचे फिर शुरू हो गए थे। कही-कही कोई मधु पीकर अघाया हुआ मोटा-सा काला भौंरा प्रोफेसर साहब के कोट से टकरा जाता था कभी कोई तितली आकर रास्ता काट जाती थी। सूय की धूप लाल हो गई थी—य सब अपना अपना ठिकाना खोज रहे थ। प्रोफेसर साहब भी अपने ठिकाने की ओर जा रहे थे—उनका हृदय आह्लाद से भर रहा था। उनका पहला ही दिन कितना सफल हुआ था ! कितना सौन्दय उन्होने देखा था और कितना सौदय बहुमूल्य सौन्दय उन्होंने पाया था। कुल्लू का अनिवचनीय सौन्दय—वास्तव मे वह देवताओ का अचन है

उस समय प्रोफेसर साहब के भीतर जो कुल्लू प्रम का ही नही मानव प्रम का ससार भर की शुभेच्छा का रस उमड रहा था उसकी बराबरी कुल्लू के प्रसिद्ध रस भरे सेव भी क्या करते ! प्रोफेसर साहब की स्नेह उडलती हुई दृष्टि के नीचे वे सेव मानो पककर रस से और भर जाते थ उनका रग कुछ और लाल हो जाता था। कितने रस गद्गद हो रहे थ प्रोफेसर साहब !

सब के बाग में फिर वही धमाका हुआ। प्रोफेसर साहब ने देखा, एक लड़का उन्हें देखकर शाख से कूदा है, उसके कूदने के धक्के से फलों से लदी हुई शाख भी टूटकर आ गिरी है।

प्रोफेसर साहब ने रोब के स्वर में कहा, क्या कर रहा है?

लड़के ने सहमकर उनकी तरफ देखा—वही लड़का था। हाथ का आधा खाया हुआ सेब वह कोट के गुलूबन्द के भीतर छिपा रहा था।

प्रोफेसर साहब के तन में आग लग गई। लपककर बालक के कोट का गला उन्होंने पकड़ा, झटका देकर सेब बाहर गिराया, दो तमाचे उसके मुँह पर लगाते हुए कहा, बदमाश, फिर चोरी करता है! अभी मैं डाँटके गया था, बेशरम को शरम भी नहीं आती!

उन्होंने लड़के की छाती में धक्का दिया। वह लड़खड़ाकर कुछ दूर जा पड़ा, गिरने को हुआ, सम्भल गया, फिर एक हाथ से कोट को वहीं से थामकर जहाँ प्रोफेसर साहब ने धक्का दिया था, एक दर्द भरी चीख मारकर रो उठा।

चीख सुनकर प्रोफेसर साहब को कुछ शान्ति हुई, कुछ आनन्द-सा हुआ। विद्रूप से उन्होंने कहा, क्या दुखती है छाती? और छिपाओ सेब वहाँ पर!

बात में भरे हुए तिरस्कार को और तीखा बनाने के लिए उनके हाथ ने उसका अनुकरण किया, उठकर तेजी से प्रोफेसर साहब के ओवरकोट के भीतर में घुसा।

एकाएक प्रोफेसर साहब पर मानो गाज गिरा। एक चौंधिया देनेवाला आलोक क्षण भर उनके आगे जलकर एक वाक्य लिख गया, तुमने तो मन चुराया है, तुम देवस्थान लूट लाए!

सहमे हुए स्तम्भित-से प्रोफेसर साहब क्षण भर खड़े रहे, फिर धीरे-धीरे उलटे पाँव गाँव की ओर चल पड़े।

रह-रह उन्हें गुमान लगा कि यह बकवास है, उनकी दलील बिलकुल गलत है, सस्ता पाया ज्ञान है, लेकिन मन न जाने कैसे इस छलबुद्धि की प्रेरणा के

प्रति बहरे हा गए थ। जसे-जस भातर का नाहृत बढ़न लगा उस रोक रखने के लिए उनकी गति भी तीव्रतर हाती गई जब व आधी की तरह गाव मे से गुजर रहे थ तब घर जाता हुआ प्रत्यक व्यक्ति कुछ विस्मय स उनकी ओर देखता और उन्ह लगता कि व सब उनकी छाती की ओर ही देख रहे हैं जस उस कान ओवरकोट की ओट म छिपी हुई देवमूर्ति को और उसके भी पीछे प्रोफेसर साहब क दिल म बसे हुए पाप को व खूब अ छा तरह जानते हैं

अधेरा होन हात व मदिर पर पहुचे। किवाड एक ओर पटककर उन्होने मूर्ति को यथास्थान रखा। लौटकर चलन लग तो आसपास छाए हुए और अब अधेर म भयानक हो गए सुनसान न उन्ह फिर सुझाया कि वे एक निधि को नष्ट कर रहे हैं लेकिन न जान क्या उनक मन म शान्ति उमड आई उ ह लगा कि दुनिया बहुत ठीक है बहुत अच्छी है।

देवीसिंह

बाबूजी, कुछ मैगज़ीन खरीदेंगे ?

मिस्टर अस्थाना ने उसका सवाल नहीं सुना। सवाल तो दूर किसी का जवाब सुनना भी उन्हें गवारा नहीं होता। अपनी ही बात उन्हें कितनी प्रिय है यह मैं अक्सर सोचा करता हूं। मुझसे बोले तुम्हारी दलीलें सब बासी होती हैं। तुम एक आदमी के प्रयास को देखकर ही मुग्ध हो जाते हो तुम्हें यह दीखता ही नहीं कि एक आदमी कुछ नहीं एक आदमी का स्ट्रगिल कोई माने नहीं रखता असल चीज़ वर्गों का संघर्ष है।

जवाब देने की व्यग्रता जाहिर होने पर भी मैं कुछ कहता पर लड़के ने फिर पुकारा बाबूजी, कुछ मैगज़ीन खरीदेंगे? नई आई हैं कई एक

और मैं क्षण भर उसे देखता रह गया। किसी तरह मैंने कहा अरे देवीसिंह तुम!! और एक बार फिर सिर से पैर तक उसे देख गया। उसने कुछ आहत अभिमान के भाव से कहा हां बाबूजी मैं दिन में स्कूल में पढ़ता हूं शाम को अखबार बेचता हूं।

मिस्टर अस्थाना से मैंने कहा इसकी कहानी आप जानते तो आपकी बात का जवाब आपको खुद मिल जाता।

हूं!

हां यह 'हूं' बहुत बातें उठा दे सकता है। पर मेरी स्मृति में गहरा कई बातें कांटे-सी उभर आईं। कोई दस साल पहले की बातें जब मैंने देवीसिंह को पहले देखा था और फिर उसका नाम जाना था।

एक बाज़ार के लम्बे बरामदे में से होता हुआ मैं चला जा रहा था। जहां-तहां पर दुकानें कार्नीसियां और पीतल-ताम्र बेचनेवाले बरामदे के

खभो स नग बठे थे। उनर बीच म रा गुजरना वसा ही था जम सागर व किनारे सूखना सीपिया वे बाच म स होन हुए जाना। एक ओर सागर-सी दुकान जिनश नुभावन आलोक वा लहरिया जव-तव आवर बरामदे का सीच जाती थी और दूसरी ओर जन-सकुल

तभी एक खभ के पीछे से एक टेटी मेटी छाया न नपककर हाथ वन्ाए और एक बमन स्वर म कहा बाबूजी एक अधन्ना दोग ?

स्वर ता वेमेन था ही क्योंकि भिखारिया के स्वर म दीनता होती है ऐसा सहज अपनापन नहा और अपन्ना मागनेवाले भिखारी भी मुझे याद नही पडता मुझे कभी मिन हो—या तो पसा मागते हैं या इक्नी।

भिखारियो को पसा दन या न देन का अथशास्त्र मैं नही जानता। मिस्टर अस्थाना कभी-कभी समझान नगत हैं कि यह दया वया का भावना गनत चीज है और भिखारिया को बन्ावा देना वग सघप को कमज़ोर बनाना है। पर मैं अधिक ध्यान नही देता। मैंने मान लिया है कि मानव के प्रति आद्रता को भी सुखा डालना अगर अवलमनी है तो वमी अवलमनी का दूर से सलाम कर नेना ही ठीक है। और सौभाग्य स उस समय मिस्टर अस्थाना साथ थ भी नही।

मैंन नन्के को सिर स पर तक देखा या सच कहूँ तो सिर स धड तक क्योकि उसका धड ही बरामदे पर टिका था। हाथो म थामी हुई लकडी की घाडिया के सहारे भुजाओपर वन देकर वह घिसटता हुआ चलता था। टागें थी ता पर सूखी हुई और निर्जीव। दखते ही नात हो जाता था कि शशव म विटामिन सी की कमी और उसके साथ साथ पोलियो या शिशु कालीन लकवे स उसका अध शरीर वकार हो गया होगा। लेकिन शरीर की सहज क्षति पूरकता क कारण उसका धड भी सुगठित था और उसके कधे अकाल यौवन की पुष्ट मास पशियो को सूचित कर रहे थे। और उसक चेहरे पर एक दृढता और आत्मविश्वास की भलक था।

मैंने नन्के से पूछा अधन्ना क्यो ? और अगर इक्नी हा तो ?

उसने मानो मुझपर एहसान करते हुए कहा तो आपकी इक्न्नी ही

से लेंगे।'

मैंने जेब में हाथ डाला। वहाँ इकन्नी भी नहीं, दुअन्नी थी। उसीके लहजे के अनुकूल मैंने भी मानो अपनी सफाई देते हुए कहा, 'अरे, मेरे पास तो सिर्फ दुअन्नी है।'

उसने मेरी ओर कुछ संदिग्ध भाव से देखा—कहीं मैं उसे बना तो नहीं रहा हूँ? फिर तनिक मुस्कराकर बोला, 'चलिए, दुअन्नी ही दे दीजिए—काम आ जाएगी।'

दुअन्नी देकर मैं उससे उसका नाम-पता और इतिहास पूछने लगता तो कोई अजब बात न होती। मैंने अक्सर लोगों को ऐसा करते देखा है। शायद किसीकी करुण कहानी सुनकर अपने इकन्नी-दुअन्नी के बलिदान की इयत्ता बढ़ जाती है। पर मैं चाहता भी तो उसने मौका नहीं दिया। दुअन्नी लेते ही उसका हाथ नीचे पड़ी पोटली पर टिका, देह का भार उसपर साधकर वह मुड़ा और इस फुर्ती से खंभे की ओट हो गया कि मैं भौंचक-सा रह गया। साथ ही ओट से उसके कंठ का स्वर मैंने सुना, 'अब हो गया बे! अबे ले आ बे—यहाँ ले आ!'

मेरा कौतूहल उचित था या नहीं, सो मैं क्या जानूँ, पर मैं खंभे की ओट रहकर आगे की बातों पर कान लगाए रहा।

उसीके समवयस्क और एक लड़के की आवाज आई, 'क्या हो गया बे, देवीसिंह?'

'बस देखता रह—अभी पता लग जाएगा।'

और एक तीसरा स्वर निकट आता हुआ, 'अबे माने तू बता दे।'

'देख बे, गाली-वाली मत दे, नहीं तो अभी ठीक कर दूँगा—हाँ!'

और फिर दूर किसीकी ओर उन्मुख होकर देवीसिंह ने आवाज दी, 'ले आ बे, जल्दी से आ, इनको भी दिखा दीजो!'

क्षण-भर बातचीत स्थगित रही। फिर एक चौथा कुछ रूखा पड़ता स्वर बोला, 'अभी देखो।'

देवीसिंह ने कड़े उत्कट स्वर से कहा, 'डब्बा वाला निकाला—पूरा!'

बीच म कुछ छोड छाड मत जाना हा ! ग्रौर उसन एक चीत्कार किया जसा सामन मधुर भोजन ग्राने पर कभी लोग करत है।

रूखा स्वर कुछ ग्रौर रुग्राई से बोला चार ता पसे दाग।

देवीसिह न डपटकर कहा ग्रबे चार क्या थे—ग्रब तू ग्राट ल लेना पर दखेंगे हम पूरा। फिर कुछ रुककर, देख बे तू भी कगाल है ग्रौर हम भी कगाल हैं। तू जो तुझ प ग्राता है दिखा द ग्रौर जो हमस बनेगा दे देंगे समभा ? ग्रौर इमसे ज्यादा कान्ना भी क्या दे देवें हैं ? क्यो बे ठीक कहा कि नहा ?

मैंन तनिक भाककर देखा। रूखे स्वर के मालिक ने कन्धों पर से बहगी उतारकर दो पिटारिया जमीन पर टिका दी थी। उसकी रूखी लटें उसके थक ग्रौर धूल भरे चेहरे से चिपक रही था। एकाग्र होकर वह पिटारिया खोलकर एक मली गुदडी की ग्रोट म तरह तरह की चीजें इधर उधर जमा रहा था

उस दिन मैंने इतना ही देखा था। या यह भी काफी ग्रसाधारण ग्रौर स्मरणीय था ही। क्रमश उसक बार मे ग्रौर भी कुछ ज्ञात हुग्रा। लेकिन ज्ञान उसे कहना चाहिए जिससे नई दृष्टि मिले नही ता जानकारिया का कोई ग्रन्त थोड ही है। देवीसिह क माता पिता नहा थे कम से कम उसक सम्पक म नहा थ किमी चाचा ने उस पाला था ग्रौर फिर शहर क मरु स्थल म डाल दिया था कि जा सक तो कोई हरियाला ठाव ढूढ ले ! किंतु देवीसिह का जीवन म रुचि थी—ग्रपार रुचि थी—वह हारा हुग्रा भिखारी नहा बन सका था

मुझे बरामदे म वह ग्रक्सर दीख जाता। लकिन हर बार पसे नही मागता मुस्कराकर रह जाता। धीरे धीरे समझ म ग्राया कि वह किसी एक व्यक्ति स सप्ताह म एक बार से ग्रधिक नही मागता ग्रौर समय मुस्कराकर मानो कह देता है कि हा मैं जानता हू ग्राप मेहरबान हैं जब मुझे जरूरत होगी ग्रापसे माग लूगा

कुछ महीना बाद वह एकाएक लापता हो गया। उस बरामदे से गुजरते हुए जब-तब उसकी अनुपस्थिति खटक जाती। पर जल्दी ही मैं उसका भी आदी हो गया फिर कोई डेढ़ वर्ष बाद ही उस दिन मिस्टर मस्ताना के साथ जाते अचानक उसे मगजीन बेचते हुए देखा। जब अचम्भा कुछ सम्भला तो मैंने उसे फिर सिर से पैर तक देखा। अबकी बार वह तब नहीं पर तब हा क्योंकि अब वह खड़ा था। उसकी दोनों टांगें लोहे और लकड़ी के एक चौखट में कसकर बाँधी कर दी गई थी—अभी उनमें जोर इतना नहीं था कि वह केवल उन्हीं के सहारे खड़ा हो सके पर वह चल तो सकता था और अब उसके चेहरे पर आत्मविश्वास और भी स्पष्ट था पूछने पर मालूम हुआ कि उसने पैसे जुटाकर अपने इलाज का प्रबन्ध किया था पोलियो रोग के एक विदेशी विशेषज्ञ के पास छः महीने बिताए थे और अब अपने भविष्य के बारे में आश्वस्त था अब जो हो वह भीख नहीं मांगेगा और मगजीनों के बिक्री के सहारे पढ़-लिख भी लेगा

एक दिन मैंने पूछा दवीसिंह मदारी का तमाशा अब नहीं देखते ?

उसने हँसकर उत्तर दिया बाबूजी अब तो तमाशा ही तमाशा है।

इस असाधारण परिपक्वता से कुछ सहमकर मैंने पूछा क्या मतलब ?

वह बोला 'पहले मैं जमीन पर रेंगता था कुछ भी देखने के लिए मुझे गर्दन उठाना पड़ती थी। तब हमेशा ऐसे तमाशे की तलाश रहती थी जो बिना गर्दन थकाए देख सकूं। अब तो खड़ा-खड़ा सब देखता हूं। सभी तमाशा है। फिर कुछ रुककर उस नाराज भंगी हंसी से दबित न भगवान बाबू साहब मानते हैं और क्या क्या भगवान मरीज हैं।

उस दिन मैंने सोचा था इस समय यदि मिस्टर मस्ताना साथ होते ! पर अच्छा ही हुआ नहीं थे। नहीं तो सारी बात सुनकर उन्हें यकीन कम हुआ था और प्रमाण हो दीवाना क्योंकि नहीं तो विटामिन सी की कमी ही क्या हो और पोलियो हो क्यों हो ?

ऐस भी लोग हैं जो मानत हैं कि अभाव म भी अपने का उपयोगी बनाना पगु होकर भी समाज म अपने अस्तित्व को सार्थक बनाना केवल पलायन है। उनक लिए वर्गों का सघष ही सब कुछ है व्यक्ति का आत्म दान कुछ नही। व यह नही देखत कि आत्मदान स पलायन सबस बडा पलायन है—वह जीवन के रस स पलायन है—किस मरुभूमि की ओर कौन जाने !

नारंगिया

उस दिन जब मोहल्लेवालों ने देखा कि हरगू ने मोहल्ले के बाहर की नाम की पक्की पर वास्तव में धूल भरी सड़क पर पुआल और बोरिये का टुकड़ा बिछाकर उसपर नारंगियाँ सजाकर दुकान कर ली है तो सबके सब विस्मय से ताकते रह गए। हरगू और दुकान!

जब से हरगू और परगू दोनों भाई अचानक आकर मुहल्ले के सिरे की पुरानी दीवार की एक मेहराब के नीचे घर बनाकर जम गए थे तब से किसीने उनको काम करते हुए या काम की तलाश भी करते हुए कभी नहीं देखा था। रिफ्यूजी दूसरे मोहल्लों की तरह इस मोहल्ले में भी अनेकों आए थे लेकिन सभी बहुत जल्द इस कोशिश में जुट गए थे कि वे शरणार्थी न रहकर 'पुरुषार्थी' कहलाने के अधिकारी हो जाएँ। सभीने कुछ न कुछ जुगत कर ली थी या गुजर-बसर का कोई वसीला निकाल लिया था। लेकिन हरगू और परगू ज्यों के त्यों बने हुए थे। किसीने उन्हें कभी भीख माँगते नहीं देखा। चोरी करते भी कम से कम देखा तो कभी नहीं। यद्यपि यह सब समझते थे कि दोनों भाई अगर कुछ लेकर नहीं आए हैं और कुछ कमाते भी नहीं हैं तो चोरी के बिना कैसे काम चलता होगा। हाँ, चोर जैसे वे दीखते भी नहीं थे। किसीके सामने उनकी आँखें नीची नहीं होती थीं और दोनों का बर्ताव कुछ ऐसा शालीनता भरा होता था कि किसीको कुछ पूछने का साहस भी नहीं होता था।

शालीनता के स्तर में कुछ गिरावट कभी दीखती थी तो दोनों भाइयों के आपस के व्यवहार में। यह नहीं कि वे आपस में लड़ते झगड़ते थे—इतना ही कि परगू हमेशा हरगू को ताने देता रहता था या जहाँ भी सम्भव हो कोंचता रहता था। हरगू प्रायः दीन भाव से सब कुछ सह लेता था लेकिन

कभी कभी वह भी बिना अपना स्वर ऊचा उठाए जला भुना उत्तर दे देता था। पछाहा लोगों म ऐसी वाता पर फौरन तू-तडाक और मारपीट की नौबत आ जाती है और रिपुजी तो और भा आमाना से जिसपर तिसपर हाथ छाड बठत हैं इसलिए मोहल्लवाल इन दोना भाइया म इस तनाव-भरे सहास्तित्व पर और भी अचम्भा किया करत थ।

खर अब हरसू न नारगियो की दुकान लगाई है और परसू दुकान से कुछ दूर एक पुनिया पर बठा हुआ बडी अवज्ञा स दुकान की और हरसू की ओर देख रहा है।

एक एक करके मोहल्ल क दो चार बच्च नारगिया की दुकान क आस पास इकट्ठ हो गए हैं। नारगियो का आकषण तो है ही लकिन उससे अधिक इस बात का कौतूहल कि दुकान हरसू की है।

एक छोटी लडकी दूसरा से कुछ आग बढकर एक हाथ स अपने झबले का छोर उठाकर मुह म खासती हुई दूसर हाथ स मानो अतर्कित भाव से नारगिया की ओर इशारा करती है और फिर हाथ समटकर टुकुर-टुकुर हरसू की ओर देखने लगती है।

लेगी ? हरसू पूछता है।

लडकी कुछ उत्तर दे इससे पहले परसू बडबडाता है हा दे दे दुकान उठाकर द द उसको। क्या एस ही दुकान चलाएगा ?

हरसू भाइ की बात को अनसुनी सी करता हुआ लडकी से कहता है लेगा तो जा घर स पस ल आ। चार चार पस की एक है।

तो ऐस दुकान चलाएगा तू। छोटे बच्चो को फुसलाकर घर स पसे मगाकर मुनाफा करगा। बच्चा को बिगाडते शम नहीं आता ?

भाइया म झगडा हो रहा है या नहा बच्चा की समझ म नहीं आता। क्याकि ऐस सम स्वर म और तटस्थ भाव म झगडा होते उन्होंने कभी दखा नहा। लकिन वातावरण म कहा पर तनाव है यह व समझत हैं। लडकी एक बार हरसू और एक बार परसू की ओर दखती है और रुआसी सी हो जाती है।

हरमू एक क्षण के लिए उसकी ओर देखता है और फिर एक नारंगिया उठाकर लड़की को दे देता है।

ले रो मत, ले जा। पैसे जब होंगे तब दे देना—नहीं तो न सही।

परमू असम्पृक्त भाव से आकाश की ओर देख रहा है मानो उसने यह देखा न हो, न उसे इस सबसे कोई मतलब हो। लेकिन वहां सम स्वर कहता है हां-हां बाप का माल है दे दे। यह लड़का कहां से और माल लाएगा और दुकान चलाएगा। बड़ी फ़ाग़ज़ी दिखाता है। सब साले टिपुओं जैसे घर के नवाब होते हैं।

हरमू एक बार भाई की ओर देखता है और फिर चुप लगा रहता है। लड़की चला जाता है।

बोरिया झाड़कर फिर बिछा दिया गया है। नारंगिया कपड़े से रगड़ कर चमका दी गई हैं। ऊपर नीम की पत्तियों की हलकी सरसराहट सुनते हुए हरमू सोचता है उसका दिन इसीके सहारे जैसे-तैसे कट जाएगा।

नारंगिया के आसपास दो चार बच्चे फिर इकट्ठे हो गए हैं। नारंगिया का भाव तो चिरन्तन है दुकान के बचपन का कौतूहल भी अभी मिटा नहीं है।

भीड़ क्या करते हो बच्चो नारंगिया लेना हो तो घर जाकर पैसे ले आओ।

परमू अपनी पुलिया पर से सुन रहा है। देखने की ज़रूरत उसे नहीं है। वह मानो अनादि रूप चक्षुओं से सब कुछ देख लेता है। बल्कि सब कुछ पहले से ही उसका देखा दिखाया है। व्यंग्य की एक रेखा उसके होंठों को तिरछा कर जाती है बस इतना हरमू देख लेता है। परमू जानता है कि वह देख लेगा—उसके द्वारा देखा जाने के लिए ही वह वहां तक लाई गई है।

बच्चों की टोली में से दो एक भाग खड़े होकर घर जाते हैं। थोड़ी देर बाद एक लौटकर आता है। उसकी चाल ही बता रही है कि उसकी मुट्ठी में दमड़ी है। उसके पीछे-पीछे दो और उनके पीछे कल आते हैं और व

भी जानते हैं कि उनके अगुआ की मुट्ठी म पस हैं। पसो से उन्हें काई सरो कार नही है लकिन अगुआ की मुट्ठी का पसा आगे जो काम कर सकता है उसमे उनकी दिलचस्पी जरूर है।

इकन्नी और नारगी का विनिमय हो जाता है। बच्चा विजय स भरा हृदय और नारगी स भरी मुट्ठी लिए हुए एक ओर को हटकर नारगी छीलकर खाने लगता है।

दुकान पर जो करिश्मा होनेवाला था वह हो चुका और वहा अब दखने को कुछ नही है। दसरे बच्चो की आखें हरसू की साबुत नारगियो स हटकर अगुआ के हाथ की छिलती हुई नारगी पर अटक जाती हैं। फस उस नारगी से फाक अलग होती है और धीरे धीरे उठकर अगुआ के मुह मे चली जाती है कभी इधर उधर नही जाती यह कितना बडा अचरज है।

परसू गरदन जरा एक ओर का मोडकर कहता है अबे इन सबका भी कह न घर जाकर पस ले आए। गाडकर रखे होंगे पसे इन्होने सब लाकर तुझे द देंगे।

हरसू तिलमिलाकर बच्चो से कुछ कहने को होता है लेकिन फिर रुक जाता है। एक बार बच्चों को सिर स पर तक देखता है और आखें झुका लेता है। बच्चे अधनगे हैं इसका ठीक अथ अब उसके मन मे बठता है— इस मोहल्ले मे बच्चा का निचला आधे शरीर मे तो यो भी कुछ पहनाने का रिवाज नही है इसलिए अधनगा का मतलब यही हो सकता है कि ऊपर का आधा शरीर भी ढका नही है। हरसू आखें झुकाए गल से थूक का एक घूट निगलता है। थूक का स्वाद कुछ नही होना चाहिए पर हरसू के लिए वह घूट कितना कडवा है यह उसके दबे होठो से दीख जाता है।

हरसू और परसू की खीचातानी की ओर बच्चा का ध्यान नही है। व एकटक फाक फाक गायब होनेवाली नारगी के अचरज को ही दख रहे हैं।

परसू कानी आख स हरसू को दखता है मानो उस तौल रहा हो। फिर मुह बच्चो की ओर फेर लता है।

लडके अपने साथियो को भी एक एक फाक द द। अगुआ की ओर

उन्मुख होकर परसू का स्वर कुछ कम रूखा हो गया है साथियों के साथ बाँटकर खाना चाहिए।

मगुआ मगुआ है और इस वक्त नारंगी का मालिक भी है। परसू की ओर देखकर उद्दत स्वर से कहता है क्या दे दूँ ? मैंने पसे देकर नहीं खरीदी ?

परसू वहीं पुलिया पर लेटे-लेटे मुँह दूसरी ओर करके थूकता है। अबे हरसू सुनी नवाबज़ादे की बातें ! पसे देकर खरीदी है ! पता तेरे बाप ने कहाँ से खरीदा है भला ? लेकिन फिर परसू का स्वर कुछ धीमा होकर मानो भीतर को मुड़ जाता है। लेकिन बच्चे को क्या डाँटना ! बाप मिलता तो पूछता कहाँ से क्लर्क करके कमाया है पसा और क्यों लड़के को अभी से ऐसा कमीनापन सिखाया है। फिर कुछ रुककर थके हुए स्वर में अबे हरसू तू ही दे दे न सबको एक एक नारंगी—देख बेचारे कैसे मुँह ताक रहे हैं ! बच्चों को बेबसी सिखाना अच्छा नहीं होता।

हरसू अचकचाकर भाई को भार देखता है। बात निस्सन्देह उसीसे कही गई है लेकिन उसमें एक ऐसा अलगाव है कि उसका जवाब कोई भी दे दे—या न भी दे—परसू को कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। हरसू जरा साहस बटोरकर कहता है कहाँ से दे दूँ सबको ? फिर तू ही कहता है कि दुकान कब खोलेगी और कल को। मान कहाँ से खरीदकर लाऊँगा।

अबे यह यही है तेरा रिफ़्यूजी का जिगरा ? अबे जानता नहीं हम सब लोग पीछे कहीं-कहीं जायदादें छोड़कर आए हैं। और देखता नहीं यहाँ भी कितनों ने फिर जायदादें खड़ी कर ली हैं ? तू ही बता पहली बार नारंगी खरीदने को पसा कहाँ से आया था—या कि नारंगियाँ तेरे साथ माँ की कोख से जनमी थीं ?

हरसू चुप है। चुप में भी विरोध समा जाते हैं। बोलते कुछ बनता नहीं है।

अबे दे दे न नारंगी—उन्हें ऐसे देखते देख तुझे तरस नहीं आता—शरम नहीं आती ? तू इनसान का बच्चा है

तरस ता म्राता है परसू—पर यता क्ा स म्राएगा ?

चल पसे मैं दता हू—गिना सबको नरगिया। परसू सेट स म्राधा वठा हाकर म्रपनी फ्टी जब टटोनता है म्रौर एक म्रठन्नी निकालकर हरसू की म्रोर फॅकता है।

हरसू चुपचाप छ नारगिया उठाकर एक एक कर बच्चा का बाट देता है। बच्च भिभकत हुए हाथ बढाकर न नेते हैं। क्षण भर म्रजुनी मरे भर म्रचरचाए-म कभी हरसू की म्रार म्रौर कभी नारगी की म्रोर दखत हैं म्रौर फिर धीरे धीरे खान नगत हैं। हरसू टाट क नीचे स टटोनकर एक दुम्रन्नी निकालता है म्रौर परसू की म्रार बढ़ाता है यह न म्रपनी बाकी।

क्या ? परसू म्रचनबी सा कहता है। मेरी बाकी ? बाकी कसा?

तून म्रठन्नी दी थी दा म्रान बाकी तेरे बचे कि नही ?

मेरे दा म्रान ! हुह ! मेरे दा म्रान ! मरे बाप के हैं ! जा ये भी उस छाकरे का द द जा म्रपन पस स नरगी खरीदता है वह द उसे जाकर यह भी म्रपने बाप का द दे।

हरसू दब स्वर स कहता है उसन क्या बिगाडा है वह ता बच्चा है बाप जसा हा

हा वे ठीक कहता है तू। म्रच्छा तो रख सिगरेट पानी कर लना। या नही म्राग भी ता ऐसे बच्चे म्राएग—उन्हें दे देना। नही तो दुकान तेरी कसे चनगी ? नोग भी क्या कहेंगे—कि रिफ्यूजी बच्चा दुकान करन लगा ता दिल म्रातमा भी बेचकर खा गया।

हरसू बोना तो तेरे दा म्राना से सत्तावन चल जाएगा ? म्रौर दो नरगिया खिला दूगा फिर

म्ररे तो हम मर तो नही गए हैं। साल रिफ्यूजी बनकर म्राया है ता हौसला रखना सीख। दिन कटने से कोई नही मरता उसके सिकुडने स ही मरत हैं सब—डाक्टर साने चाहे जो बकवास करते रहे।

हरसू दुकान करता है म्राज उसन सात नारगिया बेची हैं म्रौर मान के सात म्राने क म्रनावा दो म्राने घेतुए म पाए हैं। उसकी म्राखें